शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.354 (SJIF)

भक्तिकाल में रामकाव्य परम्परा

डॉ० कामना कौशिक
विभागाध्यक्षा, हिन्दी विभाग
सी० एम० के० नेशनल पी० जी० विद्यालय
सिरसा
ईमेलः *kamnacmk78@gmail.com*

प्राप्तिः 14.07.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

सारांश

भक्तिकालीन रामकाव्य वास्तव में समग्रता का काव्य है। इसमें सभी दृष्टियों से वैविध्य है। जीवन के प्रति एक स्वस्थ और व्यापक दृष्टिकोण है। इसी कारण इसका प्रभाव भी व्यापक है। राम–काव्य अपनी गरिमा एवं उदातत्ता के कारण हिन्दी काव्य में सर्वश्रेष्ठ है। रामभक्त कवियों की वाणी ने जनता को आशा, उत्साह व स्फूर्ति का संदेश दिया। 'रामचरितमानस' की महत्ता इसी से समझी जा सकती है कि यह रंक से लेकर राजा सभी के घरों में पाई जाती है। राम–काव्य भाव पक्ष व कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से उत्तम व समृद्ध है।

भक्ति शब्द भज् धातु में क्तिन् प्रत्यय लगने से बनता है जिसका अर्थ है अनुराग, सम्मान, सेवा, श्रद्धा। भक्त की परमात्मा के प्रति जो अनुरक्ति होती है उसमें श्रद्धा, सम्मान और सेवा की भावनाएँ स्वाभाविक रूप में निहित रहती हैं। भारत में प्राचीन युग से श्रद्धा, उपासना, कीर्तन आदि रूपों में भक्ति भाव विद्यमान है। भक्तिकाल में भक्ति जिस स्वरूप में प्रस्तुत हुई है उसके बीज प्राचीन काल के साहित्य में मिलते हैं। भगवद्गीता में भगवान् के प्रति मन और बुद्धि को अर्पित करने वाले व्यक्ति को भक्त कहा गया है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को परम प्रेमरूपा और अमृत स्वरूपा कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति माना है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (6,23) में ज्ञान प्राप्ति के लिए आराध्य देव और गुरू में भक्ति की आवश्यकता पर बल दिया है। उपनिषदों में शिव, रूद्र, नारायण आदि को परमात्मा रूप में प्रतिष्ठित किया गया। महाभारत में विष्णु की नारायण के रूप में उपासना होने लगी। महाभारत में ही विष्णु को वासुदेव कृष्ण कहा गया है। गीता में कृष्ण को ब्रह्म रूप में निरूपति करते हुए निर्गुणोपासना और सगुणोपासना में समन्वय किया गया है। पुराण काल तक वैष्णव भक्ति अपने प्रौढ़ रूप को प्राप्त हो चुकी थी। भक्ति की परम्परा का आरम्भ उत्तर भारत में हुआ तो दूसरी ओर दक्षिण भारत में इसका सूत्रपात इससे पहले ही हो चुका था। दक्षिण में भक्ति आन्दोलन की शुरूआत आलवार सन्तों ने की है। भक्ति आन्दोलन दक्षिण से महाराष्ट्र, महाराष्ट्र से होता हुआ पूर्व बंगाल में फैलने के पश्चात् उत्तरी भारत में पहुँच गया। दक्षिण भारत में शंकराचार्य के अद्वैतवाद को आधार बनाया गया और यहाँ अनेक मतों की स्थापना हुई यथाः मध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना की, रामानुजाचार्य ने विशिष्ट अद्वैतवाद की स्थापना की। स्वामी रामानन्द भक्ति को उत्तरी भारत में लाए। आचार्य वल्लभ ने भी उत्तरी भारत में भक्ति के आन्दोलन को आगे बढ़ाया। आचार्य निम्बार्क ने निम्बार्क सम्प्रदाय की स्थापना की। यह सम्प्रदाय द्वैताद्वैतवादी

है। विष्णु स्वामी ने विष्णु सम्प्रदाय की स्थापना की। यह शुद्धादैतवाद में विश्वास रखते हैं। रामानन्द जी ने रामानन्दी सम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होने विशिष्ट द्वैतवाद को माना। चैतन्य महाप्रभु ने चैतन्य सम्प्रदाय की स्थापना की। इनके सम्प्रदाय को गौड़ीय सम्प्रदाय भी कहा जाता है। वल्लभाचार्य ने वल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया। सूरदास ने इन्हें पुष्टिमार्ग का जहाज़ कहा है। सूरदास इन्हीं के शिष्य थे। इन

सभी आचार्यों ने भक्ति आन्दोलन को सम्पूर्ण भारत के कोने–कोने तक पहुँचा दिया।

रामानन्द की भाँति ही उत्तर और दक्षिण की साधना–पद्धतियों में समन्वय स्थापित करने का श्रेय मराठी सन्त ज्ञानेश्वर तथा नामदेव को है। ज्ञानेश्वर को भक्ति और योग की मूर्ति माना जाता है। इतिहासकारों ने इन्हें प्रथम उत्थानकर्त्ता माना है। ज्ञानेश्वर और नामदेव विट्ठल के उपासक थे।

भक्ति उस युग की माँग थी। एक और हिन्दू जाति अपनी भीतरी विकृतियों से रूग्ण थी दूसरी ओर विदेशी मुसलमान देश पर आधिपत्य स्थापित करने के साथ–साथ मुस्लिम धर्म का प्रचार भी करने लगे थे। अतः जनता का झुकाव भक्ति की ओर बढ़ने लगा। भक्ति आन्दोलन ने समाज में ईश्वर–विश्वास और आस्था के माध्यम से आत्म–विश्वास और निर्भयता का संचार कर मानवीय मूल्यों की नींव रखी। भक्तिकाल का समय सम्वत् 1375 शक सम्वत् 1700 तक है। इस काल में भक्ति की दो काव्यधाराएं प्रवाहित हुई–निर्गुण व सगुण।

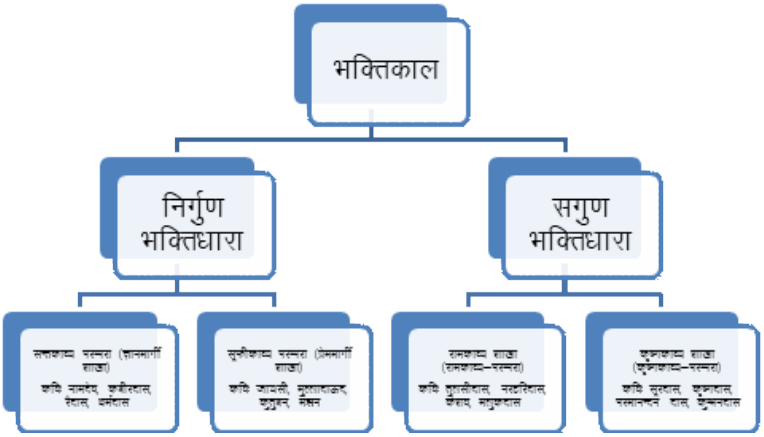

निर्गुण भक्ति के साथ ही सगुण भक्ति की परम्परा भी निरन्तर चलती रही। निर्गुण ब्रह्मलौकिक गुणों से रहित होने के कारण अगम और अगोचर है। निर्गुण ब्रह्म ही जगत् के कल्याण के लिए सगुण रूप में अवतार ग्रहण करता है। इसलिए सगुण अपने मूल रूप में निर्गुण ही होता है। तात्विक दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है। भेद केवल प्रधानता का है। निर्गुण की अपेक्षा ब्रह्म का सगुण रूप कहीं अधिक ग्राहा और संवेद्य है। कालान्तर में विष्णु के चौबीस अवतारों में से राम और कृष्ण अवतार सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुए है। प्रस्तुत लेख में रामकाव्य परम्परा पर प्रकाश डालने जा रही हूँ।

'राम' शब्द 'रम' धातु से निर्मित हुआ है। 'रम' का अर्थ है लीन। इस प्रकार राम शब्द का अर्थ है रमाने वाला। भक्ति के क्षेत्र में राम की प्रतिष्ठा मुख्यतः ग्यारहवीं शती में दक्षिण के आलवार भक्तों के पदों में मिलती है। राम–भक्ति से सम्बन्धित 'अगस्यत्य संहिता', 'कालिराघव', 'बृहद्राघव' और 'राघवीय संहिता' ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें राम–भक्ति के स्वरूप का परिचय मिलता है। स्वामी रामानन्द के प्रयत्नों से रामभक्ति का प्रवर्त्तन हुआ। इन्होंने 'श्री सम्प्रदाय' की स्थापना की। इन्होंने शूद्रों तथा नारियों के साथ–साथ सभी जातियों के लिए राम–भक्ति के द्वार खोल दिए। इनका दृष्टिकोण बड़ा उदार था। गोस्वामी तुलसीदास ने राम–भक्ति काव्य–धारा को आगे बढ़ाया। तुलसी ने अपनी भक्ति को सगुण भक्ति, अनपायिनी भक्ति, भेद–भक्ति, प्रेम–भक्ति, निष्काम भक्ति, नवद्या भक्ति आदि अनेक नामों से अभिहित किया है। 'रामचरितमानस' तुलसीकृत विश्व–विख्यात महाकाव्य है। 'जानकी मंगल' तथा 'पार्वती मंगल' तुलसीदास जी के खण्ड काव्य है। 'रामलला नहछू' लघु आकार का एकार्थ काव्य हैं। 'कवितावली' और 'गीतावली' प्रबन्ध–मुक्तक रचनाएं हैं। 'विनय–पत्रिका', 'दोहावली', 'रामाज्ञा–प्रश्न', 'वैराग्य–संदीपनी', 'कृष्ण–गीतावली', 'बरवै रामायण' आदि तुलसीदास जी की मुक्तक रचनाएं हैं।

रामकाव्य परम्परा में तुलसीदास की प्रतिभा के समक्ष अन्य कवि गौण पड़ जाते हैं। रामकाव्य परम्परा में तुलसीदास का स्थान सबसे ऊँचा है। केशव की 'रामचन्द्रिका', प्राणचन्द चौहान का 'रामायण महानाटक' हृदय राम का 'हनुमान नाटक' माधवदास का 'गुण राम रासो' पृथ्वीराज का 'रामविषयक पचास दोहे', नरहरिदास की 'अवतार चरित्र', मलूकदास की 'रामावतार लीला', लालदास की 'अवधविलास', माधवादास का 'गुण राम रासो' तथा 'अध्यातम रामायण' तथा नाभादास की 'भक्तमाल' आदि इस काल की रचनाएं हैं। तुलसीदास जी का स्थान इन सबसे ऊपर है। भाव व कला दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट–अमर रचना 'रामचरितमानस' तुलसी की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। भारतीय जनमानस को छूने की इसमें अद्भुत शक्ति है। राम–काव्य का जो महान् उत्कर्ष तुलसीदास के रामचरितमानस में दिखाई पड़ता है। परवर्ती रामभक्त कवियों की रचनाएं 'मानस' के आलोक में फीकी जान पड़ती हैं। महात्मा बुद्ध के बाद भारत के सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे। तुलसी अपनी समन्वय साधना के कारण उस युग के लोकनायक थे। तुलसी जी परिस्थितियों के अनुकूल नवीन दृष्टिकोण अपनाकर प्राचीनता का संस्कार कर सके। रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियों का अध्ययन वास्तव में महाकवि तुलसीदास का साहित्यिक अध्ययन ही है। तुलसी जी को रामभक्ति–शाखा के एकमात्र उत्कृष्ट कवि व संस्थापक कवि कहा जाए तो भी इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है। इसलिए रामभक्ति शाखा का अध्ययन तुलसीदास में ही केन्द्रित करना होगा। राम काव्य परम्परा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं–

1.राम का स्वरूप– रामभक्तों का राम विष्णु का अवतार और परब्रह्म स्वरूप है! ये दुष्टों का दमन हेतु प्रत्येक युग में मानव रूप में अवतरित होकर मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना करते हैं। ये अपनी शक्ति से दुष्टों का नाश करते हैं और भक्तों की रक्षा करते हैं। इनमें शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है। वे अपने शील गुण से लोक को आचार की शिक्षा देते हैं, शक्ति से भक्तों को संकट मुक्त करते हैं और सौन्दर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। वे मर्यादा पुरूषोत्तम हैं और आदर्श के प्रतिष्ठापक हैं। इनका लोक रक्षक–रूप प्रधान है। तुलसी ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप राम

के मर्यादा पुरूषोत्तम एवं शक्ति, शील और सौन्दर्य के समन्वय का सुन्दर चित्रण 'मानस' में प्रस्तुत किया है–

''जब जब होहि धरम की हानी। बाढ़हिं असुर महा अभिमानी।।
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं सकल सज्जन भव पीरा।।[1]

डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में– ''राजनीति की जटिल परिस्थितियों में धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकती है, यह राम काव्य ने स्पष्ट कर दिया।''[2]

2.रामभक्ति का स्वरूप– रामकाव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक–पृथक महता को स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। उनके अनुसार ज्ञान रूपी दीपक संसार की वायु से बुझ सकता है परन्तु भक्ति 'चिन्तामणि' है जिस पर संसार की हवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। राम–भक्त कवियों का भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार है, ये अन्य देवी–देवताओं की पूजा की उपेक्षा भी नहीं करते। हाँ इतना अवश्य है कि ये रामभक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इनका विश्वास है रामभक्ति से ही ये संसार रूपी भवसागर को पार कर सकते हैं। रामभक्ति को ही राम कवि जीवन का परम लक्ष्य मानते है। ये राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध है। ये कवि अपने और राम के बीच सेवक–सेव्य भाव को स्वीकारते हैं। दास्य–भक्ति को प्रधानता देते हुए भी रामभक्त कवि भक्ति के अन्य सभी अंगों को भी महत्व देते हैं। राम–भक्त कवियों की भक्ति पद्धति वैधी कोटि में आती है। इसमें नवधा भक्ति के प्रायः सभी अंगों का विधान है। दास्यभाव भक्ति, तुलसी की भक्ति का आधारभूत भाव है– ''सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि। 'मोरे मन प्रभु राम अबिस्वासा, राम ते अधिक राम कर दासा'। रामभक्त कवि जीवन का परम लक्ष्य भक्ति को मानते हैं। तुलसी जी कहते हैं–

''बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन्हि गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाद न जेहिं परलोक संवारा।।[3]

3.समन्वय की भावना– इस युग में सभी धर्म–साधनाएं अपने–अपने ढंग से नयी तथा विषम परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा कर रही थीं। इस युग में समन्वय के तीन रूप मुख्यतः थे। एक समन्वय सगुणोपासकों का था जो विभिन्न मतों में साम्प्रदायिक सद्भाव और भावात्मक एकता की दिशा में प्रयत्नशील थे। दूसरा समन्वय निर्गुणोपासक सन्तों का था, जो हिन्दू–मुसलमानों में भावात्मक एकता के लिए प्रयासरत था। तीसरा समन्वय सूफी सन्तों का था जो आत्म–प्रसार के लिए व्यापक समन्वय के मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। रामभक्तों का समन्वय आत्म–रक्षा और आत्म–संगठन के लिए था। तुलसी ने योग मार्ग, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, सांख्य और शुद्धाद्वैतवाद आदि दर्शन–पद्धतियों को एकत्र कर समन्वित करने का सार्थक सराहनीय प्रयास किया। राम काव्य का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। इसमें विराट समन्वय की भावना है। तुलसी ने निर्गुण–सगुण, ज्ञान–भक्ति, सवर्ण–शूद्र का समन्वय स्थापित किया। इनके कला–पक्ष में भी समन्वय का भाव देखा जा सकता है। समस्त काव्य–शैलियों और काव्य की ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं को इन्होंने समान रूप से प्रश्रय दिया। तुलसी अपनी समन्वय साधना के कारण उस युग के लोकनायक थे। डॉ० ग्रियर्सन इन्हें बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक और स्मिथ मुगलकाल का महानतम् व्यक्ति मानते थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तुलसी की समन्वय भावना

पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि ''उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, विज्ञान और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय, शुरू से आखिर तक समन्वय, का काव्य है।''[4]

तुलसी की अद्भुत प्रतिभा के कारण समस्त हिन्दी संसार उन्हें लोकनायक व सर्वश्रेष्ठ कवि कहता है। आचार्य डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– ''लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएं, जातियां, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियां प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।''[5]

तुलसीदास जी ने समाज के कल्याण में अपना सुख समझ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। इनका सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। इनका यह समन्वयवादी दृष्टिकोण ही वास्तव में भक्तिकाल को 'स्वर्णयुग' बना सका।

4.लोकमंगल की भावना– तुलसी के 'रामचरितमानस' में धर्म, राजनीति, समाज–नीति, अर्थ नीति आदि की योजना लोक–कल्याण और मंगल–विधान की दृष्टि से की गई है। तुलसी की साधना का परम लक्ष्य लोक मंगल का विधान करना ही था। इनके राम मर्यादा–पुरूषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं सामाजिक आदर्शों का जैसा चित्रण हमें 'मानस' में उपलब्ध होता है, अन्यत्र दुलर्भ है। 'मानस' में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज तथा आदर्श राज्य की कल्पना की है। लोक–जीवन के सभी सम्बन्ध यथा 'पिता–पुत्र', 'माता–पुत्र', 'भाई–भाई', 'राजा–प्रजा', 'सास–बहू', 'पति–पत्नी' आदि में मर्यादा का वर्णन तुलसी के राम के महाकाव्यात्मक विस्तष्त जीवन के अनेक प्रसंगों के माध्यम से किया है। तत्कालीन युग में विद्रोह के स्वर सुनाई पड़ रहे थे। अतः युग की मांग अनुसार तुलसी ने राम के समूचे क्रिया–कलापों में लोक–मंगल की भावना को चित्रित किया है। लोक मंगल का विधान ही राम–काव्य का प्राथमिक उपजीव्य कहा जा सकता है। तत्कालीन युग में पुरानी परम्पराओं और सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोह के स्वर पर प्रकाश डालते हुए 'मानस' में तुलसीदास जी कहते हैं–

''बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नरनारी।।
द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासम। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।''[6]

5.लोक–रंजन– तुलसी ने लोक मंगल के साथ–साथ लोक–रंजन का भी यथेष्ट ध्यान रखा है। इन्होंने मर्यादा की स्थापना भी लोक–रंजन की दृष्टि से की है, क्योंकि मंगल का विधान ही रंजकता से संभव है। अतः राम–काव्य में यह तत्त्व भी पर्याप्त है। राम के महत् चरित्र से ही तुलसी जी ने राम का लोक–रंजन रूप प्रतिष्ठित किया तथा समाज को उनके आदर्श पर चलने के लिए प्रेरित किया। तुलसी का आदर्श–बोध परिकल्पित न होकर सीधे यथार्थ की विकृतियों से विकसित हुआ। तद्युगीन विकृतियों को 'राम' चरित्र के माध्यम से दूर कर समाज में आदर्श को प्रतिष्ठित किया गया है। सत्–असत् का जैसा तीव्र टकराव तुलसी काव्य में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कुमति पर सुमति की विजय चित्रित कर कवि तुलसी ने 'मानस' में राम का लोक–मंगल व लोक–रंजक रूप सशक्त रूप से प्रतिष्ठित किया है। यथाः

''दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सर नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
चारिउ चरन धर्म जग माहिं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरू नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।''[7]

पात्र एवं चरित्र–चित्रण–

राम काव्य में सभी पात्रों का चरित्र–चित्रण एक विशिष्ट उद्देश्य को लेकर किया गया है। इनका चरित्र अनुकरणीय है। इनके जीवन की सभी वृत्तियों रजोगुणी, तमोगुणी तथ सत्वगुणी का चित्रण किया गया है। पात्रों में सद्गुणो और दुर्गुणों को उजागर कर सद्गुणों की दुर्गणों पर, सत्य की असत्य पर, सात्विक शक्तियों की पाशविक शक्तियों पर तथा रामत्व की रावणत्व पर विजय दिखलाई गई है। राम काव्य के पात्र आचार और लोक मर्यादा की आदर्श व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

विषयगत विविधता–

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचना 'रामचरितमानस' में जीवन के विविध रूपों का वर्णन किया है। 'मानस' में कुल सात काण्ड हैं। जिनमें कवि ने तद्युगीन वातावरण की विभिन्न परिस्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया हैं इसके उत्तरकाण्ड में यदि कलियुग के प्रकोप का भी वर्णन है तो राम–राज्य की कल्पना भी की गई है। राम–राज्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कवि लिखता है–

''सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दम सीला।।
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।।
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एक नारि ब्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।[8]

अछूतोद्वार–

तुलसीदास जी मनुष्य मात्र की समता के सिद्धान्त की स्थापना करके निम्न जातियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने का प्रयास करते हैं। तुलसी जी ने धार्मिक सम्प्रदायवाद में बाह्य आडम्बरों की प्रधानता देखकर संकीर्ण–तुच्छ विचारों को त्याग हृदय की स्वच्छता पर बल दिया। राम–राज्य में चारों वर्णों के लोगों को राजघाट पर स्नान करते हुए दिखाकर तुलसी ने समता के सिद्धान्त की स्थापना की। 'मानस' में केवट, शबरी, गृह निषाद आदि को राम–भक्ति के क्षेत्र में अत्यन्त गौरवमय पद प्रदान किया गया है। अछूतोद्वारक उदार नीति की घोषणा करते हुए तुलसी के राम कहते हैं–

''भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी।।''[9]

नारी के प्रति दृष्टिकोण–

तुलसी जी ने नारी के विभिन्न रूपों की कल्पना कर उसे विभिन्न रूपों में चित्रित किया। तुलसी ने शबरी जैसी शूद्रा भक्तिन को भी विशिष्ट पद पर आसीन किया तो पतिव्रत का पालन करने वाली नारियों की भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। उन्होंने नारी के कुत्सित–घृणित रूप की निंदा भी की। इन्होंने नारी के कामिनी रूप की भर्त्सना की है तो नर–नारी दोनों की ही मर्यादा विषय को 'मानस' में अभिव्यक्त किया गया। यथाः

''एक नारिब्रत रत झारी, ते मन बच क्रम पति हितकारी।''[10]

नारी के प्रति राम–भक्त कवियों का दृष्टिकोण तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप ही था। नारी की पीड़ा का जैसा अनुभव इन्होंने किया, वैसा बहुत कम कवि कर सके हैं। प्रायः आलोचकों ने तुलसी की नारी निंदक के रूप में निरूपित किया है। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि तुलसी ने ही सीता, पार्वती, अनसूया जैसी नारियों के उज्ज्वल चरित्र की परिकल्पना कर उन्हें गरिमा व भव्यता प्रदान की है।

प्रकृति व वस्तु वर्णन–

'मानस' एक बृहदाकार महाकाव्य है जिसमें विभिन्न प्रसंगों का अत्यंत सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यथाः राम की बाल लीला, सीता स्वयंवर, राम–भरत का चित्रकूट गमन, राजा दशरथ कि मृत्यु गमन, सीता अपहरण, राम–रावण युद्ध, राम विजय आदि। इसमें वर्णनों की विविधता ही नहीं बल्कि कहीं–कहीं वर्णन अति विस्तृत भी है। प्राकृतिक चित्रण अधिकांशतय स्थलों पर आलम्बन रूप में है, कहीं–कहीं उद्दीपन रूप में भी प्रकषति को प्रस्तुत किया गया है। प्राकषतिक सौन्दर्य का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हुए तुलसी जी लिखते हैं–

''फूलहिं फरहिं सदा तरू कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग–मष सहज बयरू बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।''[11]

अन्य स्थल पर इसी प्राकषतिक सौन्दर्य को चित्रित करते हुए कहते हैं :–

सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता विटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।।''[12]

तुलसी को प्रकषति का गहरा ज्ञान था। जितने पशु–पक्षियों, लता–वष्क्षों, भौगोलिक स्थलों और उनकी विशेषताओं का उल्लेख 'रामचरितमानस' में मिलता है, उतना अन्यत्र सुलभ नहीं।

काव्य रूप–

राम काव्य में प्रबन्ध काव्य के साथ मुक्तक रचनाओं का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। भक्ति काल में रामकथा को लेकर अनेक प्रबंध–काव्यों की सषष्टि हुई है। 'रामचरितमानस' तुलसीदास जी की कीर्ति का आधार–स्तम्भ है। यह हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें कवि ने सभी शास्त्रीय नियमों को आधार बनाकर राम–कथा को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। यूं तो तुलसी जी ने प्रबन्ध, मुक्तक तथा गीति सभी प्रकार के काव्यों की रचना की लेकिन 'रामचरितमानस' समूचे हिन्दी–काव्य में अद्वितीय महाकाव्य है। आदर्श और यथार्थ, चेतन और अवचेतन के द्वन्द्व के आधार पर मानव–जीवन की समग्रता का पूर्ण चित्र सशक्त रूप से 'मानस' में अभिव्यक्त किया गया है।

रस योजना–

तुलसी जी मानव हृदय की सूक्ष्मतिसूक्ष्म भावों को समझने का सामर्थ्य रखते थे और मानव की मनोवषत्तियों के सच्चे पारखी थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में सभी रसों का स्थान दिया है। राम का जीवन इतना विस्तष्त और विविध है उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति हुई है। रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। रामकाव्य में श्रष्ंगार वर्णन मर्यादा की सीमाओं के भीतर ही किया है। तुलसी की 'मानस' रचना में सभी रसों का समावेश है। युद्ध वर्णन में वीर और रौद्र रस है। नारद मोह में हास्य

रस, राम–विलाप व लक्ष्मण मूर्छा में करूण रस है। सारांश राम साहित्य में सर्वत्र एक रस है– वह है राम–रस और उसके आस्वादन की योग्यता राम की लीला में रमण करने वालों में ही हो सकती है।

मूल्य बोध एवं युग बोध–

राम भक्त कवि उच्च कोटि के थे। उनकी रचनाएं जनता के सम्मुख नैतिक आदर्श को प्रस्तुत करती हैं। नैतिक शिक्षा के द्वारा ही वे राम के चरित्र द्वारा आदर्श पुत्र, आदर्श मित्र, आदर्श भाई, आदर्श राजा तथा आदर्श पति का चित्र उपस्थित करते हैं। अन्य पात्र भी हमारे समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हैं जैसे भरत आदर्श भाई, सीता आदर्श पत्नी, हनुमान आदर्श सेवक आदि। तुलसी ने 'मानस' में लोक कल्याण की कामना करते हुए जनता को नैतिकता व सदाचार की शिक्षा दी है। मर्यादा पुरूषोतम राम का जीवन नैतिकता की पराकाष्ठा है।

रामभक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में युगीन परिस्थितियों का उल्लेख किया है। तद्युगीन सामाजिक विकर्षतियों का यथार्थ चित्रण करते हुए मुस्लिम शासकों की शासन व्यवस्था में होने वाले अत्याचारों पर प्रकाश डाला गया है तो साथ ही साथ राम–राज्य निरूपण के अन्तर्गत आदर्श शासन व्यवस्था की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है। निःसन्देह तुलसी ने अपना यह दायित्व भी सफलतापूर्वक निभाया।

कला पक्ष–

तुलसी की 'मानस' रचना में राम–काव्य का उत्कष्ट रूप दोहा–चौपाई में है। इसके अतिरिक्त कुण्डलियां, छप्पय, कवित्त, तोमर, तोरण, त्रिभंगी छन्दों का सफल प्रयोग हुआ है।

रामभक्त कवियों ने विविध अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। तुलसी काव्य में प्रायः सभी अलंकार मिल जाते हैं। परन्तु वे उपमा और रूपक का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। राम–काव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है। परन्तु तुलसीदास जी ने अवधी व ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। आंचलिक, अरबी, फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए है, अतः इसे हम भाषायी समन्वय भी कह सकते हैं। राम–काव्य में भावों व भक्ति के अनुरूप प्रायः प्रसाद व माधुर्य गुणों का अधिक प्रयोग हुआ। ओजगुण का भी उनकी भाषा में अभाव नहीं है। तुलसी जी ने अपने साहित्य–सागर में यथा प्रसंग–यथावश्यकता तीनों ही शब्द–शक्तियों का प्रयोग किया है। अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त व सुरूचिपूर्ण बनाने हेतु अपनी भाषा में अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। अपने समकालीन कवियों में तुलसीदास जी को संवाद शैली में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। राम–लक्ष्मण–परशुराम संवाद, अंगद–रावण संवाद, राम–विभीषण संवाद बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। तुलसी जी ने अवधी–ब्रज दोनों भाषाओं का प्रयोग बड़ी सशक्तता और कलात्मकता के साथ किया है। राम–काव्य की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसका परिमार्जित रूप है।

सन्दर्भ सूचि–

1. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृतिया' : डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 167
2. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृतियां' : डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 171

3. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृतियां' : डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 171
4. 'हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास' 'सगुण भक्तिधारा' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 66
5. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृतियां' : डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 167
6. 'हिन्दी साहित्य की प्रवृतियां' : डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 169
7. 'मध्यकालीन काव्य कुंज' 'रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड से' : डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 54
8. 'मध्यकालीन काव्य कुंज' 'रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड से' : डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 55
9. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' 'भक्तिकाल', डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा तथा डॉ० रामनिवास गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, पृ० 203
10. 'मध्यकालीन काव्य कुंज' 'रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड से' : डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 55
11. 'मध्यकालीन काव्य कुंज' 'रामचरितमानस : उत्तरकाण्ड से' : डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 55